ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(2): 522-524
www.allresearchjournal.com
Received: 07-01-2017
Accepted: 08-02-2017

डॉ. अंजना रानी
एसोसिएट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र,
श्री गोविंद गुरु राजकीय
महाविद्यालय, बांसवाड़ा,
राजस्थान, भारत

Correspondence
डॉ. अंजना रानी
एसोसिएट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र,
श्री गोविंद गुरु राजकीय
महाविद्यालय, बांसवाड़ा,
राजस्थान, भारत

गीता के नैतिक निहितार्थ और उनकी प्रशासन में भूमिका

डॉ. अंजना रानी

सारांश
मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक कोई न कोई कर्म अवश्य करते रहता है। क्योंकि परमात्मा ने जो ऊर्जा दी है, उससे कर्म स्वभाविकरुपेण नि.सृत होते रहता है। अतः एक बड़ा सवाल उठता है कि किस कर्म को किया जाए और किस कर्म को न किया जाए? दूसरा बड़ा सवाल यह भी है कि कर्म को कैसे किया जाए? उपनिषदों की सार गीता ने इन प्रश्नों का बड़ा मनोवैज्ञानिक और सूक्ष्म विश्लेषण किया है। यह शोध लेख एक विनम्र प्रयास है कि समझा जा सके कि गीता का नैतिक निहितार्थ क्या है और उसकी प्रशासन में क्या कोई भूमिका हो सकती है? आशा है इससे जीवन की दृष्टि कुछ साफ हो सकेगी।

कूट शब्दः सकाम, निष्काम, निषिद्ध, काम्य, कर्तव्य के लिए कर्तव्य।

प्रस्तावना
नैतिकता का सीधा संबंध मनुष्य के कर्मों से हैं। मनुष्य को कर्म तो करना ही है, सवाल है वह कर्म कैसा हो?
गीता का संदेश स्पष्ट है कि कर्म कामनारहित होना चाहिए। कामनारहित क्यों? क्योंकि कामनाओं का जन्म काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इत्यादि वृत्तियों से होता है,और ये वृत्तियां हमारी दृष्टि पर पर्दा डाल कर उसे दूषित कर देती हैं। दृष्टि के दूषित होने पर हमारा विचार सम्यक् नहीं हो पाता और इस तरह हमारा आचरण अर्थात् हमारे कर्म भी दूषित हो जाते हैं।
संकल्प को अंतिम परिणति तक ले जाना तभी संभव है, जब कर्म निष्काम हो। ध्यान रहे कामनाविहीन होना और लक्ष्यविहीन होना दोनों में बहुत अंतर है। कई बार विद्यार्थी इस प्रकार के सवाल करते हैं कि बिना किसी कामना के कोई कर्म में क्यों प्रवृत्त होगा? स्पष्ट है कि वे कामना और लक्ष्य के अंतर को नहीं समझ पा रहे हैं। गीता हमें बताती है कि मनुष्य बिना कर्म किए एक पल भी नहीं रह सकता -

"न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥"[1]

अर्थात् कोई भी मनुष्य किसी भी समय में क्षण-मात्र भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य प्रकृति से उत्पन्न गुणों द्वारा विवश होकर कर्म करता है।

मनुष्य ऊर्जावान है। यह ऊर्जा अपने-अपने स्वभाव के अनुरूप अपनी संभावनाओं को पहचानकर और फिर उन्हें तराशकर वास्तविकता में परिणत करने के लिए ही है। यदि हम अपनी उर्जा को सही दिशा में निमज्जित नहीं कर पाए तो हमारा जीवन सार्थक नहीं हो पाएगा। निरर्थक जीवन निश्चित ही हमें तनाव में ले जाएगा।

कुरुक्षेत्र में अर्जुन को श्रीकृष्ण न्याय की स्थापना के लिए अन्याय से युद्ध करने के लिए कहते हैं। हम जानते हैं कि अर्जुन को युद्ध की निरर्थकता का बोध नहीं हुआ था बल्कि वह तो मोहग्रस्त था। बार-बार एक ही सवाल वह उठाता है कि अपनों को कैसे मैं मार सकता हूं? उसकी स्थिति वैसी नहीं थी जैसी कलिंग युद्ध के बाद सम्राट अशोक की थी। यहां पर गीता की एक महत्वपूर्ण बात ध्यान में रखनी होगी कि प्रकृति के सत्त्व, रज और तम नामक गुणों से कोई भी व्यक्ति स्वतंत्र नहीं है और दूसरी बात यह कि कोई भी कर्म पूर्णतया शुभ या अशुभ नहीं है। जिस तरह आग धुएं से ढकी रहती है,उसी तरह प्रत्येक कार्य में कुछ न कुछ दोष भी हो सकता है। ऐसी स्थिति में अच्छी बात यह होगी कि या तो ज्ञान निष्ठा भाव से कर्म किए जाएं या कर्म का फल ईश्वर को समर्पित कर दिए जाएं। ऐसी स्थिति में श्री कृष्ण अर्जुन को परामर्श देते हैं कि -

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमति न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः।।[2]

अतएव हे कुन्ती पुत्र ! दोष युक्त होने पर भी सहज कर्म को नहीं त्यागना चाहिये, क्योंकि धूएँ से अग्नि की भाँति सभी कर्म किसी न किसी दोष से आवृत हैं।

एक तरफ वे कर्म हैं, जिन्हें हमें "*कर्तव्य के लिए कर्तव्य*" समझकर करना है। प्रशासन से जुड़े लोग यदि बिना किसी अन्य कामनाओं के अपने कर्तव्यों को पूरा करने में लग जाएं तो निश्चित ही व्यवस्था बनाने में बड़ी मदद मिल सकती है।

दूसरी तरफ वे कर्म भी हैं, जो ऊर्जा के अतिरेक से जन्म लेते हैं। इन्हें कर्म करना भी उतना न्यायसंगत नहीं होगा क्योंकि वह कर्ता की उच्चत्तर भावदशा प्रेम, करुणा, मैत्री से नि.सृत होते हैं। वे कर्म एक रूप में किए नहीं जाते, स्वत:होते हैं। एक छोटा बच्चा जब खेलता है, तब क्या हम कहेंगे कि वह कोई कर्म कर रहा है? वह तो ऊर्जा के अतिरेक से अपनी उर्जा को गति दे रहा है। भारतीय दर्शन की मान्यता है कि स्रष्टा की ऐसी ही अतिरिक्त उर्जा से सृष्टि का सृजन हुआ है।

गीता सभी संभव कर्मों का उल्लेख करती है और यह बतलाती हैं कि कौन से कर्म किए जाने चाहिए और कौन से कर्म नहीं किए जाने चाहिए? और उन कर्मों का परिणाम क्या होता है? निषिद्ध-कर्म, काम्य-कर्म और निष्काम-कर्म को बतलाते हुए कृष्ण कहते हैं कि चोरी, कपट, हिंसा, प्रमाद, भ्रष्टाचार आदि निषिद्ध कर्म हैं, जिनका पूर्ण त्याग किया जाना चाहिए।

स्त्री, पुत्र, संपत्ति आदि की प्राप्ति के उद्देश्य किए जाने वाले कर्म काम्य-कर्म की श्रेणी में आते हैं, उनका भी त्याग करना चाहिए। क्योंकि भौतिक दृष्टि से जो वस्तु महत्वपूर्ण है वह आध्यात्मिक दृष्टि से अच्छी नहीं कही जा सकती है।

शास्त्र की दृष्टि से विहित कार्य जैसे दान, तप,आजीविका आदि के लिए कर्म निश्चित ही किए जाने चाहिए; पर इन कर्मों में भी फल की अपेक्षा न करते हुए कार्यरत होना चाहिए। वर्ण और आश्रम के कर्म भी इसी तरह संपन्न करना चाहिए। सभी प्रकार के कर्मों में सूक्ष्म वासना और अहं भाव को दूर रखना चाहिए। यदि ज्ञान द्वारा यह सब करना संभव न हो तो सभी कर्मों के फल ईश्वर के चरणों में समर्पित कर दिए जाने चाहिए। गीता का सार

यही है कि कर्म तो करना है किंतु किसी भी कामना को नहीं रखना है-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भुर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥[3]

अर्थात् तेरा कर्म करने में अधिकार है, इनके फलो में नही। तू कर्म के फल प्रति असक्त न हो या कर्म न करने के प्रति प्रेरित न हो।

श्री कृष्ण के इस संदेश का आध्यात्मिक उद्देश्य तो स्पष्ट है ही पर एक अन्य जगह पर निष्काम कर्म के लिए उन्होंने एक ऐसा भी कारण दिया है जो ईश्वर को न मानने पर भी अर्थात व्यावहारिक दृष्टि से भी स्वीकार किया जा सकता है। कर्म के **5** घटक बताते हुए वे कहते हैं कि दैव नामक घटक व्यक्ति के हाथ में नहीं रहता जो कर्म को सफलता या विफलता प्रदान करता है। अतः स्वयं के वश में जो हो, उसे फल की परवाह किए बिना अवश्य करना चाहिए-

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ।।[4]

इस विषय में अर्थात् कर्मों की सिद्धि में अधिष्ठान और कर्ता तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के करण एवं नाना प्रकार की अलग-अलग चेष्टाएँ और वैसे ही पाँचवाँ हेतु दैव कहा गया है । दैव या भाग्य के कारण यदि असफलता भी मिलती है तो भी कर्म को कुशलतापूर्वक करने से पीछे नहीं हटना चाहिए; क्योंकि इससे व्यक्ति अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है और उसे कभी अफसोस नहीं होता कि उसने अपने हिस्से का प्रयास नहीं किया।

किसी भी सृजन के लिए सकारात्मक उर्जा आवश्यक है। जब भी गीता संदेश की बात होती है तब प्रायः हमारा ध्यान श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिए गए उपदेश की तरफ ही जाता है। लेकिन मूल संदेश जो कृष्ण स्वयं अपने जीवन से दे रहे हैं उसे हम देख नहीं पाते। कृष्ण किसी बाध्यतावश या "*कर्तव्य के लिए कर्तव्य*" के उद्देश्य से युद्ध नहीं कर रहे हैं बल्कि कृष्ण का पूरा जीवन ऊर्जा के अतिरेक का उदाहरण है। ऊपर जिस उच्चत्तर भावदशा मैत्री, करुणा, प्रेम की चर्चा की गई हैं, कृष्ण के कर्म उन्हीं भावों से निःसृत हो रहे हैं।

गीता के नैतिक निहितार्थ को प्रशासन में यदि व्यावहारिक रूप दिया जाए तो कर्मशीलता के साथ-साथ संवेदनशीलता का भी सुंदर संयोग बन सकता है।

सन्दर्भ

1. गीता, तीसरा अध्याय, पांचवां श्लोक.
2. श्रीमद्भागवत गीता, (18/ 48)
3. श्रीमद्भागवत गीता (2/ 47)
4. श्रीमद्भागवत गीता (18/ 14)